हे मेरी तुम

केदारनाथ अग्रवाल

हे मेरी तुम

(पत्नी को सम्बोधित कविताओं का संकलन)

केदारनाथ अग्रवाल

साहित्य भंडार
इलाहाबाद 211 003

I S B N : 978-81-7779-179-6

❁

प्रकाशक

साहित्य भंडार

50, चाहचन्द, इलाहाबाद-3

दूरभाष : 2400787, 2402072

❁

लेखक

केदारनाथ अग्रवाल

❁

स्वत्वाधिकारिणी

ज्योति अग्रवाल

❁

संस्करण

साहित्य भंडार का

प्रथम संस्करण : 2009

❁

आवरण एवं पृष्ठ संयोजन

आर० एस० अग्रवाल

❁

अक्षर-संयोजन

प्रयागराज कम्प्यूटर्स

56/13, मोतीलाल नेहरू रोड,

इलाहाबाद-2

❁

मुद्रक

सुलेख मुद्रणालय

148, विवेकानन्द मार्ग,

इलाहाबाद-3

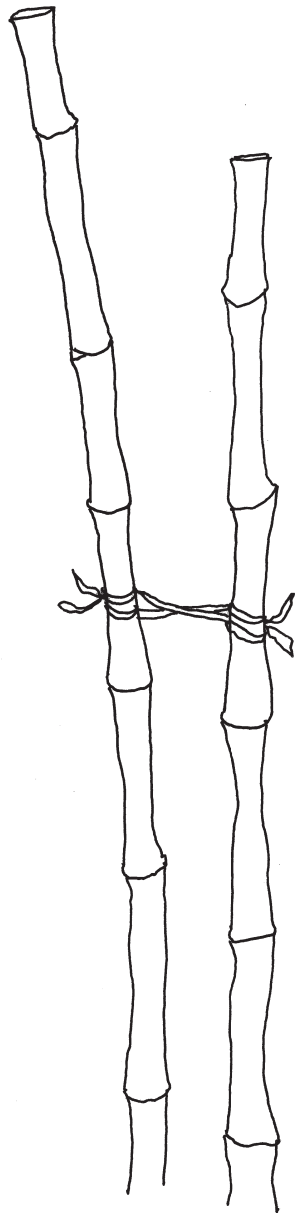

मूल्य : 95.00 रुपये मात्र

हे मेरी तुम

कविप्रिया
पार्वती देवी
को

प्रकाशकीय

इस संकलन का प्रकाशन 'साहित्य भंडार' के प्रथम संस्करण के रूप में सम्पन्न हो रहा है। केदारजी के उपन्यास 'पतिया' को छोड़कर, उनके शेष समस्त लेखन को प्रकाशित करने का गौरव भी 'साहित्य भंडार' को प्राप्त है। केदारनाथ अग्रवाल रचनावली (सं० डॉ० अशोक त्रिपाठी) का प्रकाशन भी 'साहित्य भंडार' कर रहा है।

एक तरह से केदार-साहित्य का प्रकाशक होने का जो गौरव 'साहित्य-भंडार' को मिल रहा है उसका श्रेय केदार-साहित्य के संकलन-संपादक डॉ० अशोक त्रिपाठी को जाता है उसके लिए 'साहित्य-भंडार' उनका आभारी है। यह गौरव हमें कभी नहीं मिलता यदि केदार जी के सुपुत्र श्री अशोक कुमार अग्रवाल और पुत्रवधू श्रीमती ज्योति अग्रवाल ने सम्पूर्ण केदार-साहित्य के प्रकाशन का स्वत्वाधिकार हमें नहीं दिया होता। हम उनके कृतज्ञ हैं।

भाई आर. एस. अग्रवाल ने इस संकलन को कलात्मक सज्जा प्रदान किया इसके लिए उनका आभार।

सतीशचन्द्र अग्रवाल
विभोर अग्रवाल
2009

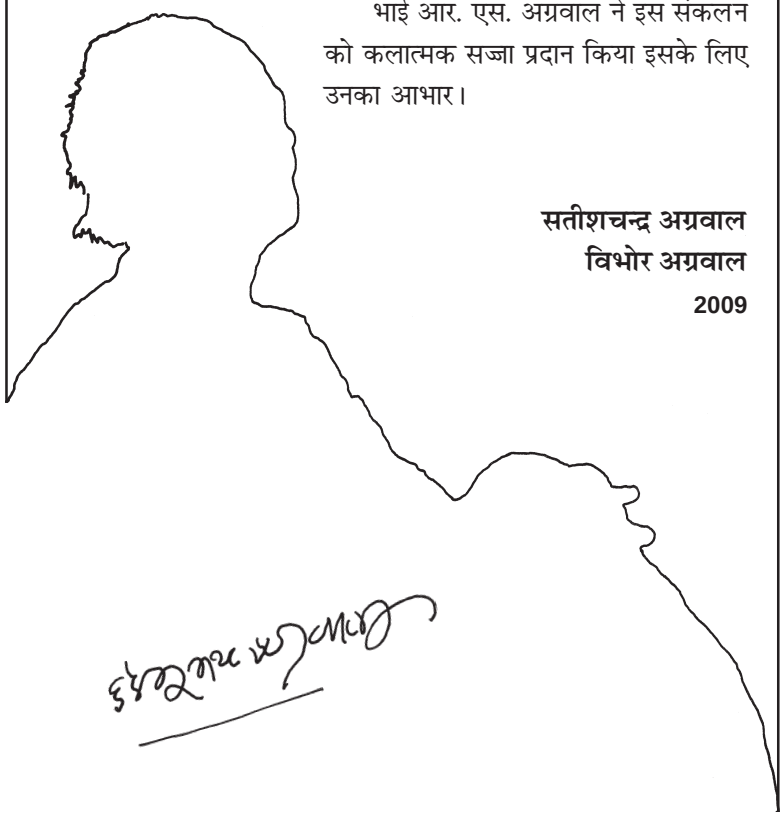

भूमिका

अपनी बेटी किरन के पुनर्विवाह के समय मैंने कुछ गमले मँगाये—उनमें गुलाब लगाये। एक में करोटन लगाया। बड़े उत्साह से बेटी का ब्याह किया। उन पौधों ने भी उस ब्याह में शिरकत की। ऐसा मैंने महसूस किया। वे मेरे आत्मीय बन गये—कुटुम्बी बन गये—मेरे आँगन में बस गये और प्रिय से प्रियतर हो गये। फिर, कुछ दिनों बाद जब गमले दरकने लगे—टूटने लगे तब मैंने अपने इन कुटुम्बियों को जमीन में रोप दिया और ये बढ़ने लगे—और ऊँचाई भी पाने लगे। गमले में लगे हुए कद्दावर न हुए थे। जमीन पाकर अपनी-अपनी पूरी औकात में आ गये और तब से अब तक मेरे आँगन में लगे हैं।

मैं उन्हें सींचता हूँ। सींच-सींचकर प्यार देता हूँ। जब बहुत ज्यादा भारी भरकम हो जाते हैं और नये कल्ले ला सकने में असमर्थ हो जाते हैं तब हम (या तो मैं या माली) कैंची से इन्हें कतरकर, छोटा कर देते हैं। गुलाबों की जड़ें धूप में खोल देता हूँ। फिर खाद और मिट्टी से पूर देता हूँ। तब फिर नौजवान हो जाते हैं और बड़े गरबीले लाल गुलाब निकल आते हैं। हँसते हैं। पंखुरियाँ खोले खिलखिलाते हैं और खुशबू से खुशखबरी देते हैं कि जियो—जी भर जियो—धूप पियो और खड़े-खड़े भी रहना पड़े तो जीवन-भर खड़े रहो—कई-कई बुरे मौसम भी सहो पर जिये जाओ—जिये जाओ और मौत को पास न आने दो।

करोटन भी कभी-कभी मुझसे ऊँचा हो जाता है। मैं नहीं काटता तो वह छोटे-छोटे लाल-बैगनी-फुटकियों जैसे फूल-ले आता है और हवा में हिलता झूमता पास बुलाता रहता है।

कई खूबसूरत पखेरू भी आ जाते हैं। बुलबुल भी आई है। बोली है। रस घोल-घोलकर चली गई है। और भी छोटी-छोटी प्यारी-प्यारी चिड़ियाँ आई हैं और मेरे इन कुटुम्बियों से मिल-मिलाकर, इन्हें खुश करके और स्वयं भी खुश होकर चली गई हैं। मैंने उन्हें भी पहचाना है।

उन्हें भी प्यार दिया है। उनके पंख है। इसलिए उड़ जाती हैं। मुक्त गगन में विचरती हैं। जंगल में मंगल मनाने चली जाती हैं।

ऐसा क्रम, यह सिलसिला आत्मीय होते चले जाने का, लगातार बरसों से चल रहा है। इसलिए मैं पौधों से—फूलों से—करोटन से बात भी कर लेता हूँ। ये न बोलें तब भी बोलते-से लगते हैं। ये मेरी सुनते हैं। मैं इनकी सुनता हूँ। मेरी पत्नी भी ऐसा ही करती हैं।

और अब, जब हम पति-पत्नी, दोनों उम्र की ढलान में पहुँच गये हैं और किराये के घर में एक-दूसरे को देख-देखकर जीने का अभ्यास करने लगे हैं तब, इन सहृदय उदार कुटुम्बियों से घनिष्ठता अत्यधिक हो गई है और हम दोनों इनके विषय में वैसे ही बात कर लेते हैं जैसे यही हमारे सब-कुछ हैं। इस संग्रह की कविताओं में इन्हीं की बातें हैं। कोई सुनने वाला न था इसलिए पत्नी से इन्हें कहता रहा हूँ। इसीलिए इन कविताओं में मैंने उन्हें ही सम्बोधित किया है। वही सुनने वाली हैं।

जब शरीर शिथिल होने लगता है और बाहर के आकर्षण दूर पड़ने लगते हैं और कर्म कर सकने की क्षमता समाप्तप्राय हो जाती है तब भी हम जीते रहते हैं और जीने की बलवती लालसा से प्रेरित होते रहते हैं, और सोच-विचार करने से नहीं चूकते। हम ऐसी अवस्था में पहुँचकर छोटी-छोटी बातों से—घर के अन्दर की बातों से—अपने अन्दर की हो रही बातों से—पूरी तरह से जुड़ जाते हैं, और उन्हें ही व्यक्त करने लगते हैं। बुढ़ापे में कम लोग पास आते हैं और बूढ़ों की बातें नहीं सुनते। पत्नी ही बच रहती है जो एकमात्र श्रोता हो जाती हैं अपने प्रिय की बातों की। मेरे साथ भी यही हुआ है। यह कविताएँ पत्नी ने सुनी हैं। इनमें हम दोनों का घरू जीवन झलमला उठा है। स्नेह की ये बातें भी भले ही हमारी निजी बातें हों, दूसरे भी इनको पढ़कर—समझकर—अपनी बीती समझ सकते हैं। इसीलिए इन कविताओं को प्रकाशित करा रहा हूँ। इनसे मुझे जीवन जीने की उत्कंठा मिली है। दूसरों को भी यह कविताएँ जीवन जीने के लिए उत्कंठित करेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है। इनकी सार्थकता इसी में है।

ऐसा नहीं है कि बाहर के जीवन को लेकर मैंने कविता लिखना बन्द कर दिया है। अब भी लिख रहा हूँ। वे कविताएँ दूसरे संग्रह में आयेंगी।

इस संग्रह का नाम मैंने 'हे मेरी तुम' रखा है। मैं अपनी पत्नी को 'तुम' कह कर ही प्यार से सम्बोधित करता हूँ। इसीलिए मेरी पत्नी यानी 'तुम' इन कविताओं में सम्बोधित होकर 'हे मेरी तुम' हो गई हैं। भले ही कुछ लोगों को यह नाम विचित्र लगे, मुझे तो बहुत ही सहज और सरल लगता है। मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे मैं अनन्त काल तक अपनी पत्नी को पुकारता जीता रहूँगा और अपना मन सस्नेह खोलता रहूँगा। हम दोनों के न रहने पर भी हम दोनों एक दूसरे से जीते-जैसे बातें करते रहेंगे और हमारे घर के ये कुटुम्बी पौधे फूल लाते रहेंगे और हमारी, आज जैसी याद, सब को दिलाते रहेंगे।

हम दोनों बखूबी जानते हैं कि जीवन जीना भी एक उदात्त कला है। जो यह कला नहीं सीखता वह जीवन नहीं जीता—जीवन से छीजता चला जाता है और अन्त में अपने में ही विलीन होकर सबके लिए खो जाता है। द्वन्द्व में पड़ा आदमी ही निखरता और निखार से संसार का सँवार करता रहता है। अच्छा हुआ, हम आधुनिक बौद्धिक न हुए और टूटते-टूटते भी पेड़-पौधों और फूलों को प्यार करते रहे और जिन्दा रहे।

बाँदा(उ० प्र०)
5-2-1981

–केदारनाथ अग्रवाल

अनुक्रम

कविता का शीर्षक या पहली पंक्ति	रचना-तिथि	पृष्ठांक
चिड़ीमार ने चिड़िया मारी	28-2-1973	13
काल कलूटा बड़ा क्रूर है	28-3-1973	14
चढ़ी जवानी-बरसा पानी	29-7-1973	15
नील गगन में उमँड़ी कजरी	29-7-1973	16
वृद्ध हुए हम	29-7-1973	17
फूल तुम्हारे लिए खिला है	29-7-1973	18
सब चलता है लोकतन्त्र में	30-7-1973	19
हाड़ बुढ़ाये	30-7-1973	21
किसने किसका हृदय चीरकर	30-7-1973	23
आज सुबह से	3/4-8-1973	26
देखो, रवि ने धूप डाल दी	30-8-1973	27
बंद हुई गरमी की आँख	5-6-1976	28
यह दिन गोरा चिट्टा	10-7-1976	29
पिता मेरु को काट रही है	18-8-1976	30
जबरजंग हो गया झूठ	23-5-1978	31
न चलता घर	23-5-1978	32
कागज के गज गजब बढ़े	26-8-1978	33
अपने प्राण बाण-से साधे	26-8-1978	34
न घास है	1-9-1978	35
बजी रूप-रस की शहनाई	16-10-1978	36
मैंने देखा	17-10-1978	37

तरुणाई का झूला झूला	18-10-1978	38
एक अजनबी	20-10-1978	39
लोकतंत्र के चिमटे	14-3-1979	40
रूप-गंध भर लायीं	24-5-1979	41
हम मिलते हैं बिना मिले ही	28-6-1979	42
बौद्धिक नहीं होता बेईमान	5-7-1979	44
भीतर की लौ साधे	20-7-1979	45
बल का बोध प्रबल हो जागा	13-8-1979	46
गगन धरा की सीप खुल गयी	30-8-1979	47
पवन पिता की तरह मौन है	1-9-1979	48
काले-काले आये बादल	3-9-1979	49
माली कैंची लिये	12-9-1979	50
गोरखधंधे में उलझे हैं लोग यहाँ के	25-9-1979	51
सूरज दूर जले चंदा दूर हँसे	25-9-1979	53
असम्भव हो गया सम्भव	5-3-1980	54
दहका खड़ा है सेमल का पुरनिया पेड़	18-3-1980	55
पाँव से जमीन दबाये	19-3-1980	56
प्रिया चाँदनी पड़ी शहर की रेत में	21-3-1980	57
तपस्या भंग करते हैं पेड़ की	23-3-1980	58
लाल गुलाब खिला मुसकाया	26-3-1980	59
ठठरियाये पेड़	18-5-1980	60
दिगम्बरी आग	18-5-1980	61
चूर हुआ घाम का घमण्ड	2-7-1980	62
ठूँठ में जय की जवानी	9-7-1980	63
धूप चढ़ी पेड़ों के सिर पर	26-7-1980	64
नाजुक दूब	29-7-1980	65
आई धूप हँसी इठलाई	7-8-1980	66
वाक्य पूरा कर रहा हूँ	9-8-1980	67

जीने का उल्लास जगा दो	20-8-1980	68
चढ़ाई पर चढ़ा पानी	24-8-1980	70
अन्नमय प्राण	28-8-1980	71
जीने का अभ्यास करें	28-8-1980	72
गठरी चोरों की दुनिया	1-9-1980	73
बूढ़ा हुआ सुआ	23-9-1980	74
मौन पेड़	23-9-1980	75
रूखे-सूखे बाँस	13-9-1980	76
खड़े-खड़े सो गये गुलाब	23-9-1980	77
हार गया करतार कलाकर	23-9-1980	78
प्यार नहीं पाथर की नाव	30-9-1980	79
सुख का मुख	2-10-1980	80

●●

चिड़ीमार ने चिड़िया मारी

हे मेरी तुम!
चिड़ीमार ने चिड़िया मारी;
नन्हीं-मुन्नी तड़प गई
प्यारी बेचारी।

हे मेरी तुम!
सहम गई पौधों की सेना;
पाहन-पाथर हुए उदास;
हवा हायकर
ठिठकी ठहरी
पीली पड़ी धूप की देही।

हे मेरी तुम!
अब भी वह चिड़िया जिन्दा है
मेरे भीतर,
नीड़ बनाये मेरे दिल में,
सुबुक-सुबुककर
चूँ-चूँ करती
चिड़ीमार से डरी-डरी।

28-2-1973

काल कलूटा बड़ा क्रूर है

हे मेरी तुम!
काल कलूटा बड़ा क्रूर है।
उसका चाकू और क्रूर है–
उससे ज्यादा।
लेकिन अपना प्रेम प्रबल है।
हम जीतेंगे काल क्रूर को;
उसका चाकू हम तोड़ेंगे;
और जियेंगे;
सुख-दुख दोनों
साथ पियेंगे;
काल क्रूर से नहीं डरेंगे–
नहीं डरेंगे–
नहीं डरेंगे।

28-3-1973

चढ़ी जवानी–बरसा पानी

हे मेरी तुम!
चढ़ी जवानी–
बरसा पानी;
झूमी-झूली डाल–
काल के खड़े पेड़ पर
डाले झूला।

हे मेरी तुम!
ऊपर बाग-हर्ष का फूला;
नीचे
यम का पड़ा बसूला।

29-7-1973

नील गगन में उँमड़ी कजरी

हे मेरी तुम!
नील गगन में
उमँड़ी कजरी,
बरबस ढरकी रस की गगरी।

हे मेरी तुम!
नाचे
नागर-नगर-नागरी;
नागपंचमी है अनुकूला।

29-7-1973

वृद्ध हुए हम

हे मेरी तुम!
वृद्ध हुए हम
क्रुद्ध हुए हम,
डंकमार संसार न बदला,
प्राणहीन पतझार न बदला,
बदला शासन, देश न बदला,
राजतंत्र का भेष न बदला,
भाव-बोध-उन्मेष न बदला,
हाड़-तोड़ भू-भार न बदला!

हे मेरी तुम!
कैसे जियें? यही है मसला;
नाचे कौन-बजाये तबला?
राम-रहीम हुए हैं कँगला!

हे मेरी तुम!
यही खुशी है प्यार न बदला,
प्रथम प्यार का ज्वार न बदला,
मिलनातुर सहकार न बदला,
मधुदानी व्यवहार न बदला

29-7-1973

फूल तुम्हारे लिए खिला है

हे मेरी तुम!
फूल तुम्हारे लिए खिला है–
लाल-लाल पंखुरियाँ खोले
गजब गुलाब।

हे मेरी तुम!
इसे देखकर चूमो;
चूम-चूमकर झूमो;
झूम-झूम कर नाचो-गाओ;
कुटिल काल देखे,
मुँह बाये,
मुग्ध-मगन हो जाये,
नेह-नीर हो बरसे-हरसे;
जड़ हो चेतन,
चेतन हो
जीवन की धारा;
धारा काटे निठुर कगारा;
मानव को मानव हो प्यारा;
जग हो फूल गुलाब हमारा।

29-7-1973

सब चलता है लोकतन्त्र में

हे मेरी तुम!
सब चलता है
लोकतन्त्र में,
चाकू-जूता-मुक्का-मूसल
और बहाना।

हे मेरी तुम!
भूल-भटककर भ्रम फैलाये,
गलत दिशा में
दौड़ रहा है बुरा जमाना।

हे मेरी तुम!
खेल-खेल में खेल न जीते,
जीवन के दिन रीते बीते,
हारे बाजी लगातार हम,
अपनी गोट नहीं पक पाई,
मात मुहब्बत ने भी खाई।
हे मेरी तुम!
आओ बैठो इसी रेत पर,
हमने-तुमने जिस पर चलकर
उमर गँवाई।

30-7-1973

हाड़ बुढ़ाये

हे मेरी तुम!
हाड़ बुढ़ाये,
रूखे-सूखे
डगमग डोले,
पेट पूजते,
अंधकार का न्याय भोगते,
गुन के गहरे कुएँ खोदते,
तुम्हें सम्हाले,
मुँह में डाले ताले।

लोक-लाज की लकड़ी पकड़े,
आँधी-पानी-आग-राग को
विधि से जकड़े,
हम हिच आये।

हे मेरी तुम!
हाँथ-पाँव के सच्चे साथी
साथ न देते,
दिल-दिमाग भी
साथ न देते,
दृष्टि धुआँई–
कठिन काल ने रीढ़ झुकाई।

हे मेरी तुम!
आओ, बैठो,
दिन का जंगल कटते देखो,
नये पंख के
        नये पखेरू
बिना नीड़ के उड़ते देखो;
रूप-राग का
        व्यापक वैभव
पल-छिन पल-छिन
        घटते देखो,
आँसू का परदा
        अब उर पर पड़ते देखो।

30-7-1973

किसने किसका हृदय चीरकर

हे मेरी तुम!
किसने
        किसका
        हृदय चीरकर
अभ्यंतर की राजनीति का
        नक्शा देखा!

        हे मेरी तुम!
किसने
        किसकी
        नाड़ी पकड़ी;
किसने किसकी गहराई में
जाकर प्राण परेखा!

हे मेरी तुम!
चाल-चलन में—जीवन में
सच,
        अब तक अब तक
        उभर न पाया;
        नय से अनय न हारा;
खोज न पाया जग ध्रुवतारा।

हे मेरी तुम!
लोग गलीचा बुन लेते हैं
झूठ हाथ से,
झूठ नियति का
सूत लगाये,
छल-बल की,
करनी अपनाये।

30-7-1973

आज सुबह से

हे मेरी तुम!
आज सुबह से, नागपंचमी
—सूरजमुखी प्रकाश नहायी—
हरियाली की पुष्ट देह से
पानी में पग-ताल बजाती;
माटी को मद-मस्त बनाती;
चिरई-मनई के मन-मन में
झूमर-झूला
झूल-झूलकर
पेंग लगाती।

हे मेरी तुम!
आज सुबह से समय-मदारी
खोल पिटारी,
भरी भीड़ में, सड़क किनारे,
जटा बढ़ाये,
कानों में बाला लटकाये,
मुँह से मउहर बजा रहा है
सुर की-उर की
मधुर रागिनी;

रिझा रहा है विषदंती को,
ईति-भीति भव-भीति भगाये,
नीच मीचि का भरम भुलाये।

हे मेरी तुम!
बजते-बजते,
जैसे-जैसे मउहर
अपनेपन में आई–
चौगुन-पँचगुन धुन में पहुँची,
लहरा लेती स्वरारोह के,
मद का
लहर-पटोर उड़ाती,
झूमी जाती,
और मदारी के हाथों से
उछली जाती,
श्रोताओं को
मधुकोषों की तरह गुँजाती
नहीं अघाई।

हे मेरी तुम!
नागराज की खुली कुंडली;
खड़ा हुआ, फन काढ़े झूमा
नाद-नाद हो गई देह से;
अनुरागी उन्माद हो गया–
गरलजयी आह्लाद हो गया।

हे मेरी तुम!
सर्प-यज्ञ की सुधि बिसराये,
—जन-मन-मंगल से
उत्तोलित,
शुभाशीष का हाथ हो गया;
अमानिशा को
आत्मसात् कर
वेणी ललित-ललाम हो गया;
ऊर्ध्वगमन के लिए ज्ञान का
सहज-सुलभ सोपान हो गया।

हे मेरी तुम!
अब की जैसी
नागपंचमी कभी न आई।
नागराज को दूध पिलाओ,
जीवन की जय-जीत मनाओ।

3/4-8-1973

देखो, रवि ने धूप डाल दी

हे मेरी तुम!
देखो, रवि ने धूप डाल दी,
भरी नदी में
चाँदी तैरी।

हे मेरी तुम!
लहरों को उन्माद हो गया,
नृत्य-नाद में
चाँदी का अनुवाद
हो गया।
हे मेरी तुम!
इस नाटक को,
खेल रहा है
काल-कलापी,
प्रकृति-नटी के साथ;
मुग्ध देखती
दुनिया, भूली
आपाधापी।

30-8-1973

बंद हुई गरमी की आँख

हे मेरी तुम!
बंद हुई
गरमी की आँख,
महासिंधु की
हवा चली;
मौसम ने
पिपरमिंट देह में मली।

5-6-1976/मद्रास

यह दिन गोरा चिट्टा

हे मेरी तुम!
यह दिन
        गोरा चिट्टा,
उजला जैसे बछड़ा,
पुष्ट धूप में
        निखरा;
इसे पुत्रवत् मानें–
पालें-पोसें,
बड़े प्यार से
        सबल बनाएँ,
हम इसका पौरुष चमकाएँ।

10-7-1976

पिता मेरु को काट रही है

हे मेरी तुम!
पिता-मेरु को
काट रही है
पिता-मेरु की
बेटी सरिता;
यह क्रम कभी न टूटा,
प्यार पिता का
कभी न छूटा।

18-8-1976

जबरजंग हो गया झूठ

हे मेरी तुम!
अब और-अब और
जबरजंग हो गया झूठ,
कि
सच के साथ जीने में,
जिंदगी कहर ढाती है,
जान बच नहीं पाती है।

23-5-1978

न चलता घर

हे मेरी तुम!
न चलता घर
अब नहीं चलता चलाये
ठेलने-ठालने से;
इस मँहगाई में
कमाई पड़ गयी खटाई में।

हे मेरी तुम!
घटते-घटते
अब बिल्कुल घट गई
मेरी औकात,
गर्दिश-गुबार में—
आर्थिक अंधकार में।

23-5-1978

कागज के गज गजब बढ़े

हे मेरी तुम!
कागज के गज गजब बढ़े;
धम-धम धमके—
भीड़ रौंदते-
इनके पाँव कढ़े;
ऊपर अफसर चंट चढ़े—
दण्ड-दमन के पाठ पढ़े।

26-8-1978

अपने प्राण बाण-से साधे

हे मेरी तुम!
अपने प्राण बाण-से साधे,
जग से बुढ़िया नहीं डरी;
पार पहुँचने का मन बाँधे,
राह-किनारे
पड़ी रही,
जैसे डाँवाडोल तरी।

26-8-1978

न घास है

हे मेरी तुम!
न घास है—
न घास की सुवास;
खूँटे में बँधा घोड़ा
        तनतनाता है;
दाँत निपोरे-
        नथुने फुलाए,
मुक्त होने के लिए
        हिनहिनाता है;
खुरों से
ठोकर जमीन को
        ठकठकाता है।

1-9-1978

बजी रूप-रस की शहनाई

हे मेरी तुम!
मैंने देखा :
शहंशाह सूर्य ने झुककर
मेरे आँगन की क्यारी के
खिले-खुले दिल के
गरबीले लाल गुलाब
बड़े प्यार से चूमे।

हे मेरी तुम!
मैंने देखा :
धूप हँसी दूधिया दीप्ति से,
खुशबू ने
खुश दिल से
खुशखबरी फैलायी,
बजी रूप-रस की शहनाई।

हे मेरी तुम!
मैंने देखा :
राग-पराग-भरी पंखुरियाँ
मेरे भीतर
मेरे बाहर
रस से छलकीं;
मेरे उन्मादी यौवन की
सोयी-खोई सुधियाँ महकीं।

16-10-1978

मैंने देखा

हे मेरी तुम!
मैंने देखा :
बिना बोल के
बोले लाल गुलाब।

हे मेरी तुम!
मैंने देखा :
मोद मनाते
महके लाल गुलाब।

हे मेरी तुम!
मैंने देखा :
बजा विजय का
प्रमुदित सुमन-सितार।

हे मेरी तुम!
मैंने देखा :
दिक्-दिगन्त में
गूँजी प्रेम-पुकार।

17-10-1978

तरुणाई का झूला झूला

हे मेरी तुम!
मैंने देखा :
तरुणाई का झूला झूला
फूला-फूला
लाल गुलाब।

हे मेरी तुम!
मैंने देखा :
दिन-सुगंध की गाँठ खुल गई,
महका फूला
लाल गुलाब।

हे मेरी तुम!
मैंने देखा :
मुझे देखता-मुझे बुलाता
दिव्य दृष्टि से
लाल गुलाब।

18-10-1978

एक अजनबी गुलाब

हे मेरी तुम!
खिला है
        गमले में लगे पेड़ पर
एक अजनबी गुलाब;
जीत ली है इसी ने जैसे
जमीन–
        जहान–
        आसमान की
बेमुरव्वत जवानी।

20–10–1978

लोकतंत्र के चिमटे

हे मेरी तुम!
आग को पकड़े दबाये हैं
लोकतंत्र के चिमटे;
भस्म होने से राजतंत्र को
बचाये हैं
लोकतंत्र के चिमटे।

14-3-1979

रूप-गंध भर लायीं

हे मेरी तुम!
मैंने देखा :
कली-कली-दिल खुला
पेड़ का;
पंखुरियाँ मुसकायीं;
रूप-गंध भर लायीं।

हे मेरी तुम!
मैंने देखा :
पवन प्रसन्न चला
रसियाया;
सोरभ ने भूतल महकाया;
किरन-किरन ने
मुँह गुलाब का चूमा
जैसे तुमने मुझको-
मैंने तुमको चूमा।

24-5-1979

हम मिलते हैं बिना मिले ही

हे मेरी तुम!
हम मिलते हैं
बिना मिले ही
मिलने के एहसास में
जैसे दुख के भीतर
सुख की दबी याद में।

हे मेरी तुम!
हम जीते हैं
बिना जिये ही
जीने के एहसास में
जैसे फल के भीतर
फल के पके स्वाद में।

28-6-1979

बौद्धिक नहीं होता बेईमान

हे मेरी तुम!
बौद्धिक नहीं होता बेईमान
क्योंकि
बेईमान नहीं होता बौद्धिक।

हे मेरी तुम!
बौद्धिक, सतह से ऊपर,
जमीन-जहान के अर्थ
अहं की निजता में
खोजता है।

हे मेरी तुम!
बेईमान, सतह से नीचे,
जमीन-जहान के अर्थ
स्वार्थ की प्रभुता में
खोजता है।

हे मेरी तुम!
बौद्धिक, बेईमान होने से,
बचता है;
लेकिन, जब, स्वार्थ के डग
भरता है,
बेईमान से बहुत आगे
पहुँचता है।

हे मेरी तुम!
बेईमान, जब,
बौद्धिक होने का
दम भरता है–
स्वार्थ की सिद्धि में,
बेईमान से
बहुत आगे पहुँचता है।

5–7–1979

भीतर की लौ साधे

हे मेरी तुम!
हम दोनों अब भोग रहे हैं
दीन देह को,
प्यार-प्यार से बाँधें;
ढले-ढले
दिल से ढकेलते
दिन का ठेला;
और रात को
काट रहे हैं
भीतर की लौ साधे।

20-7-1979

बल का बोध प्रबल हो जागा

हे मेरी तुम!
बल का बोध
प्रबल हो जागा;
बँधी मुट्ठियाँ;
उठे हजारें हाथ भीड़ के;
जन का ज्वार सड़क पर उमँड़ा।
नगर
सिंह-सा गरजा-तड़पा;
दु:शासन का धीरज छूटा;
वाग्मी बैतालों की मति का
मघवा रोया।
निश्चय ही
यह शुभ लक्षण है,
अब लगता है
जन का शासन होगा
चाहे कुछ दिन
और अभी लग जाएँ।

13-8-1979

गगन धरा की सीप खुल गयी

हे मेरी तुम!
गगन-धरा की
सीप खुल गई,
इससे निकला
मनहर मोती।

हे मेरी तुम!
गगन-धरा अब
दमदम दमके,
हम दोनों के
मन भी चमके।

हे मेरी तुम!
गगन-धर की
सीप मुँद गई,
बंद हो गया
मनहर मोती।

हे मेरी तुम!
गगन-धरा को
रैन डस गई,
केवल दिपते
रहे सितारे।

30-8-1979

पवन पिता की तरह मौन है

हे मेरी तुम!
पवन
पिता की तरह मौन है;
माँ की तरह
उदास आग है;
पानी
शिशुवत् निंदियाया है;
इस मौसम से
देश विकल है;
श्रम संतापित
और विफल है।

1–9–1979

काले-काले आये बादल

हे मेरी तुम!
गबरू–
पानीदार–
जवान
काले-काले आये बादल;
झूमे–
झूले–
गरजे–
तरजे
ताने तीर-कमान;
लगा कि जैसे
अब कर देंगे
पानी-पानी
सकल जहान।
किन्तु दिखाकर हमको-तुमको
सबको ठेंगा–
बिन बरसे, कर गये पयान।

3-9-1979

माली कैंची लिये

हे मेरी तुम!
माली, कैंची लिये,
        कतरता है गुलाब की डालें,
डालें नहीं–
कतरता है जैसे मेरी ही बाहें;
        मैं भरता हूँ आहें।
लेकिन, कटते-कटते, चुप-चुप
कहते मुझसे पेड़ :
वह निश्चय ही कल फूलेंगे–
        अच्छे-अच्छे देंगे
        लाल गुलाब;
तन महकेगा–
मन महकेगा–
        महकेगा घरबार–
हम चूमेंगे पंखुरियों को–
        पहनेंगे गलहार।

12-9-1979

गोरखधंधे में उलझे हैं लोग यहाँ के

हे मेरी तुम!
अपने-अपने किये-जिये का
जाल बिछाये–
गोरखधंधे में उलझे हैं
लोग यहाँ के;
नहीं देखते उधर मौत को
जो बैठी है ताक लगाये,
आकर
फौरन ले जाने को।

25-9-1979

सूरज दूर जले, चंदा दूर हँसे

हे मेरी तुम!
सूरज दूर जले;
चंदा दूर हँसे;
घर में
        घर का धुआँ
        डसे;

मैं यह देखूँ,
मैं यह भोगूँ,
मौत पुकारे–
साँझ-सकारे,
मैं कैसे
        सब छोड़ चलूँ,
उलट-पलट
        मुँह मोड़ चलूँ?
फिर भी मैंने
        कमर कसी;
ललकारा;
बोला : तुम आओ–
पकड़ो हाथ, उठाओ।

वह शरमायी,
पास न आयी;
ठिठकी-ठहरी;
मुझे छोड़कर
चली गयी;
मेरी मछली-
नहीं फँसी।

25-9-1979

असम्भव हो गया सम्भव

हे मेरी तुम!
असम्भव हो गया सम्भव
कि पैसा बटोरने वाले आदमी
पेड़ हो गये पैसे के
        शेखचिल्ली के घर के
फूले-फले;
न बटोरने वाले अब
भेड़ हो गये–
        बटेर हो गये–
मिट्टी का ढेर हो गये।

5-3-1980

दहका खड़ा है सेमल का पुरनिया पेड़

हे मेरी तुम!
दहका खड़ा है
सेमल का पुरनिया पेड़,
टपाटप टपकाता जमीन पर
लाल-लाल फूली आग,
कचहरी के सामने
क्रांति का माहौल बनाये;
राजनीति से
ताल-मेल बैठाये।

18-3-1980

पाँव से जमीन दबाये

हे मेरी तुम!
पाँव से जमीन दबाये,
महाशून्य से दबा,
आदमी
उकड़ूँ बैठा है विपन्न–
अतीत को जिये–
वर्तमान को पिये–
भविष्य पर कान लगाये,
होने–न–होने की
गुत्थी में उलझा,
मौन का मुखौटा चढ़ाये,
मात खाये की मुद्रा बनाये।
अनजान अस्तित्व में
आत्मा छिपाये।

19–3–1980

प्रिया चाँदनी पड़ी शहर की रेत में

हे मेरी तुम!
सोये खड़े पेड़ पर आये
कौए, बैठे;
काँव-काँव करते हैं कर्कश
रात में।
अँगनाई में पड़े
आदमी की हराम करते हैं
नींद।

हे मेरी तुम!
प्रिया चाँदनी
पड़ी शहर की रेत में
बड़े प्रेम से जिला रही है
हमको-तुमको,
काँव-काँव से हमें बचाये।
अंक लगाये।

21-3-1980

तपस्या भंग करते हैं पेड़ की

हे मेरी तुम!
तपस्या भंग करते हैं पेड़ की,
पेड़ पर बैठे कौए।
न आई इस बार
        निसर्ग सुन्दरी
वट-वृक्ष की
        तपस्या भंग करने।

23-3-1980

लाल गुलाब खिला मुसकाया

हे मेरी तुम!
खुली कली की
परत-परत की—
        पंखिल पिंडी,
लाल गुलाब
        खिला मुसकाया,
राग-पराग-प्रबोध
        दिवस ने पाया।

26-3-1980

ठठरियाये पेड़

हे मेरी तुम!
ठठरियाये खड़े हैं बिना पत्तियों के
परार्थी पेड़,
निर्धन–
दरिद्र–
असमर्थ–
और बेजान,
हम आदमियों के
आदिम वनस्पतीय अग्रज।

18–5–1980

दिगम्बरी आग

हे मेरी तुम!
धकाधक धधकी
सुबह से शाम तक
दिगम्बरी आग,
भूगोल में
आतंक का अलाव जलाए,
आसमान को तमतमाए।

हे मेरी तुम!
हताहत पड़ी है
सूर्य से मारी–
बेजान हुई धरती;
फरार हो गया
पानी का परोपकारी
परिवार,
जेठ के जुल्म की इमरजेंसी का
सहते-सहते अत्याचार।

18-5-1980

चूर हुआ घाम का घमण्ड

हे मेरी तुम!
पातहीन पेड़ में अशोक के
निकली हैं
नई-नई पत्तियाँ;
पानी में सीझा है
हो गया हरा;
दमख़म से जीने की
ताब से भरा।

हे मेरी तुम!
धरती में लगा रहा
धरती का सगा;
जहाँ नहीं लोग जगे
वहाँ यह जगा;
मूल-बद्ध साहस से
चूर हुआ घाम का घमंड,
दाहक दुख-दर्द और दण्ड।

2-7-1980

ठूँठ में जय की जवानी

हे मेरी तुम!
नये आये मेघ,
बरसा नया पानी;
लौट आई
ठूँठ में जय की जवानी।
दामिनी ने
आइना इसको दिखाया,
हर्ष से यह हरा होकर
हरहराया।

9-7-1980

धूप चढ़ी पेड़ों के सिर पर

हे मेरी तुम!
धूप चढ़ी पेड़ों के सिर पर,
अन्तिम पग-ध्वनि
खनक उठी।

आग लगे पानी की नदिया,
देह उघारे,
टनक उठी।

रसिक-शिरोमणि
रंग-बराती
मगन, गगन में
लहक उठे।

दीप-दान के नये सितारे
झलमल-झलमल
झलक उठे।
26-7-1980

नाजुक दूब

हे मेरी तुम!
देखो, देखो,
अरे यहाँ पर–
इस कोने में,
इस धरती ने जनम दिया है
नाजुक नन्हीं नयी दूब को।
मेघ बरसकर,
चले गये
परदेश विचरने;
धूप-घाम ने 'फाहा' बनकर,
पाल-पोसकर,
गरम-गरम छाती का अपना
दूध पिलाकर,
इसे जिलाया–
और बढ़ाया।
हे मेरी तुम!
रंग मिला है इसे तुम्हारे रूप रंग का;
इसे मिला है केसर-तिलक शरीर
तुम्हारा।
हे मेरी तुम!
याद करो–कुछ ऐसा ही था
प्रथम-दृष्टि का प्रेम हमारा और तुम्हारा
नन्हा नाजुक नयी दूब-सा प्यारा।

29-7-1980

आई धूप हँसी इठलाई

हे मेरी तुम!
आई धूप,
हँसी इठलाई,
नहीं पकड़ में आई।
हे मेरी तुम!
गई शाम को,
घर की हँसी गई।

हे मेरी तुम!
रात हुई,
हम लेटे;
ताराओं के
दाँत विषैले देखे,
चमक नुकीली चुभी
हृदय में;
डरे और घबराये।

7-8-1980

वाक्य पूरा कर रहा हूँ

हे मेरी तुम!
जी रहा हूँ
जिन्दगी अपनी
और तुम्हारी,
एक साथ,
हाथ में लिये हाथ।
एक 'मैं' में
द्वैत से अद्वैत होकर,
वाक्य पूरा कर रहा हूँ,
क्रिया-कर्त्ता-कर्म से
भव भर रहा हूँ।

9-8-1980

जीने का उल्लास जगा दो

हे मेरी तुम!
भीतर पैठी कल की चिन्ता
हिला रही है मेरी रीढ़।
हे मेरी तुम।
खड़े-खड़े लड़खड़ा रहा है
मेरे हाड़ों का यह ढाँचा।

हे मेरी तुम!
काँप-काँप जाती है मेरे
दिल-दिमाग की बूढ़ी दुनिया।

हे मेरी तुम!
खेते-खेते अपना डोंगा
मेरे हाथ शिथिल हो आये।

हे मेरी तुम!
कटु यथार्थ से लड़ते-लड़ते
अब न लड़ा जाता है मुझसे।

हे मेरी तुम!
अब तुम ही थोड़ा मुसका दो
जीने का उल्लास जगा दो।

20-8-1980

चढ़ाई पर चढ़ा पानी

हे मेरी तुम!
चढ़ाई पर चढ़ा पानी–
अट्टहास करता पानी,
पाट को पाटे, प्रलाप करता है
प्रलय के प्लावन से।

हे मेरी तुम!
नदी में डूबी नदी–
न रही सुख-सर्जनी नदी–
प्रिया-प्रियदर्शनी नदी!

हे मेरी तुम!
आरपार चले गये,
खम्भों में खड़े पुल,
आवागमन का
मार्ग प्रशस्त किये।

हे मेरी तुम!
सूर्य को खा गये
घिरे घहराए–
आसमान में छाये–
घमंडी बादल।

हे मेरी तुम!
न रहा उदयाचल–
न रहा अस्ताचल।
शंकित,
अधीर,
धरधराता है खड़े-खड़े
मुमुक्ष पहाड़।

हे मेरी तुम!
महार्णव पीती
महो की मांगलिक मेधा
देखती है हो रही
वरुणासुरी लीला,
महाकाल को पराभूत किये
मृत्युंजयी स्वभाव से।

24-8-1980

अन्नमय प्राण

हे मेरी तुम!
चाउर की यह किनकी
जो जमीन में गिरी
और जो
चिउँटी मुँह में
दाब चली,
यही अन्नमय प्राण है,
गुण-अवगुण की खान है।

28-8-1980

जीने का अभ्यास करें

हे मेरी तुम!
कल तक बजी समय की डफली
मेरे हाथों;
कल तक मैंने तुम्हें सुनाईं
कर-करतब की अपनी थापें!

हे मेरी तुम!
अब न गरीबी की वह हस्ती,
और न हस्ती की वह मस्ती।

हे मेरी तुम!
आओ, बैठें पास-पास
हम हास और परिहास करें,
एक दूसरे को निहारकर
जीने का अभ्यास करें।

28-8-1980

गठरी चोरों की दुनिया

हे मेरी तुम!
'गठरी-चोरों' की दुनिया में
मैंने गठरी नहीं चुरायी;
इसीलिए कंगाल हूँ;
भुक्खड़ शाहंशाह हूँ;
और तुम्हारा यार हूँ;
तुमसे पाता प्यार हूँ।

1-9-1980

बूढ़ा हुआ सुआ

हे मेरी तुम!
कुछ न हुआ, अब
बूढ़ा हुआ सुआ।
पखने हुए भुआ।
देखो,
काल ढुका;
मन सहमा;
तन काँपा, और
झुका।

23–9–1980

मौन पेड़

हे मेरी तुम!
पेड़
न फूले–
नहीं हँसे,
खड़े हुए हैं मौन डँसे।

23–9–1980

रूखे-सूखे बाँस

हे मेरी तुम!
द्वन्द्व-द्वन्द्व में
आहत होकर
आये काम–
बहुत हुए बदनाम
रूखे-सूखे बाँस
बड़े विश्वास के।

13-9-1980

खड़े-खड़े सो गये गुलाब

हे मेरी तुम!
खड़े-खड़े सो गये गुलाब;
कल से अब तक नहीं जगे,
नहीं नयन से नयन मिले।

हे मेरी तुम!
हवा जगाती रही
जगाये जगा न एक गुलाब!
धूप हँसाती रही
हँसाये हँसा न एक गुलाब!

हे मेरी तुम!
हुआ न हर्ष-हुलास–
उत्सव का उल्लास!
यह दिन भी ढल गया उदास।

23-9-1980

हार गया करतार कलाकर

हे मेरी तुम!
फूलों की बौछार से–
रंग-बिरंगे प्यार से–
हार गया करतार कलाकर,
अपने ही दरबार में;
अपना मुकुट उतार के
मुक्त हुआ भव-भार से।

23-9-1980

प्यार नहीं पाथर की नाव

हे मेरी तुम!
प्यार नहीं पाथर की नाव
डूब जाय जो नदिया में
भारी भार भरी।

हे मेरी तुम!
प्यार सिंधु की
लहर-छहर है—
गमनागमनी
आक्रीड़न है,
आर-पार का उत्तोलन है।

30-9-1980

सुख का मुख

हे मेरी तुम!
सुख का मुख तो
यही तुम्हारा मुख है
जिसको मैंने,
इस दुनिया के दुख-दर्पण में,
अपने सिर पर मौर बाँधकर देखा
और देखकर मुग्ध हुआ;
यह क्यों आज उदास है?

2-10-1980

केदारनाथ अग्रवाल
एवं
रचना-संसार